जिनकी वजह से आज घर-घर में वेद-पुराण, रामायण और गीता पहुँची

इस देश में संत महात्माओं की कमी नहीं, शाही जिंदगी जीने वाले और कॉरपोरेट घरानों के लिए कथा करने वाले इन संत- महात्माओं ने अपने ऑडिओ-वीडिओ जारी करने, अपनी शोभा यात्राएं निकालने, अपने नाम और फोटो के साथ पत्रिकाएं प्रकाशित करने और टीवी चैनलों पर समय खरीदकर अपना चेहरा दिखाकर जन मानस में अपना प्रचार करने के अलावा कुछ नहीं किया। मगर इस देश के सभी संत और महात्मा मिलकर भी गीता प्रेस गोरखपुर के संस्थापक कर्मयोगी स्वर्गीय हनुमान प्रसाद पोद्दार की जगह नहीं ले सकते। शायद आज की पीढ़ी को तो पता ही नहीं होगा कि भारतीय अध्यात्मिक जगत पर हनुमान पसाद पोद्दार नामका एक ऐसा सूरज उदय हुआ जिसकी वजह से देश के घर-घर में गीता, रामायण, वेद और पुराण जैसे ग्रंथ पहुँचे सके।

आज `गीता प्रेस गोरखपुर' का नाम किसी भी भारतीय के लिए अनजाना नहीं है। सनातन हिंदू संस्कृति में आस्था रखने वाला दुनिया में शायद ही कोई ऐसा परिवार होगा जो गीता प्रेस गोरखपुर के नाम से परिचित नहीं होगा। इस देश में और दुनिया के हर कोने में रामायण, गीता, वेद, पुराण और उपनिषद से लेकर प्राचीन भारत के ऋषियों -मुनियों की कथाओं को पहुँचाने का एक मात्र श्रेय गीता प्रेस गोरखपुर के संस्थापक भाईजी हनुमान प्रसाद पोद्दार को है। प्रचार-प्रसार से दूर रहकर एक अकिंचन सेवक और निष्काम कर्मयोगी की तरह भाईजी ने हिंदू संस्कृति की मान्यताओं को घर-घर तक पहुँचाने में जो योगदान दिया है, इतिहास में उसकी मिसाल मिलना ही मुश्किल है। भारतीय पंचांग के अनुसारविक्रम संवत के वर्ष १९४९ में अश्विन कृष्ण की प्रदोष के दिन उनका जन्म हुआ। इस वर्ष यह तिथि शनिवार, 6 अक्टूबर को है।

राजस्थान के रतनगढ़ में लाला भीमराज अग्रवाल और उनकी पत्नी रिखीबाई हनुमान के भक्त थे, तो उन्होंने अपने पुत्र का नाम हनुमान प्रसाद रख दिया। दो वर्ष की आयु में ही इनकी माता का स्वर्गवास हो जाने पर इनका पालन-पोषण दादी माँ ने किया। दादी माँ के धार्मिक संस्कारों के बीच बालक हनुमान को बचपन से ही गीता, रामायण वेद, उपनिषद और पुराणों की कहानियाँ पढ़न-सुनने को मिली। इन संस्कारों का बालक पर गहरा असर पड़ा। बचपन में ही इन्हें हनुमान कवच का पाठ सिखाया गया। निंबार्क संप्रदाय के संत ब्रजदास जी ने बालक को दीक्षा दी।

उस समय देश गुलामी की जंजीरों मे जकड़ा हुआ था। इनके पिता अपने कारोबार का वजह से कलकत्ता में थे और ये अपने दादाजी के साथ असम में। कलकत्ता में ये स्वतंत्रता आंदोलन के क्रांतिकारियों अरविंद घोष, देशबंधु चितरंजन दास, पं, झाबरमल शर्मा के संपर्क में आए और आज़ादी आंदोलन में कूद पड़े। इसके बाद लोकमान्य तिलक और गोपालकृष्ण गोखले जब कलकत्ता आए तो भाई जी उनके संपर्क में आए इसके बाद उनकी मुलाकात गाँधीजी से हुई। वीर सावकरकर द्वारा लिखे गए '१८५७ का स्वातंत्र्य समर ग्रंथ' से भाई जी बहुत प्रभावित हुए और १९३८ में वे वीर सावरकर से मिलने के लिए मुंबई चले आए। १९०६ में उन्होंने कपड़ों में गाय की चर्बी के प्रयोग किए जाने के खिलाफ आंदोलन चलाया और विदेशी वस्तुओं और विदेशी कपड़ों के बहिष्कार के लिए संघर्ष छेड़ दिया। युवावस्था में ही उन्होंने खादी और स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करना शुरु कर दिया। विक्रम संवत १९७१ में जब महामना पं. मदन मोहन मालवीय बनारस हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए धन संग्रह करने के उद्देश्य से कलकत्ता आए तो भाईजी ने कई लोगों से मिलकर इस कार्य के लिए दान-राशि दिलवाई।

कलकत्ता में आजादी आंदोलन और क्रांतिकारियों के साथ काम करने के एक मामले में तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने हनुमान प्रसाद पोद्दार सहित कई प्रमुख व्यापारियों को राजद्रोह के आरोप में गिरफ्तार कर जेल भेज दिया। इन लोगों ने ब्रिटिश सरकार के हथियारों के एक जखीरे को लूटकर उसे छिपाने में मदद की थी। जेल में भाईजी ने हनुमान जी की आराधना करना शुरु करदी। बाद में उन्हें अलीपुर जेल में नज़रबंद कर दिया गया। नज़रबंदी के दौरान भाईजी ने समय का भरपूर सदुपयोग किया वहाँ वे अपनी दिनचर्या सुबह तीन बजे शुरु करते थे और पूरा समय परमात्मा का ध्यान करने में ही बिताते थे। बाद में उन्हें नजरबंद रखते हुए पंजाब की शिमलपाल जेल में भेज दिया गया। वहाँ कैदी मरीजों के स्वास्थ्य की जाँच के लिए एक होम्योपैथिक चिकित्सक जेल में आते थे, भाई जी ने इस चिकित्सक से होम्योपैथी की बारीकियाँ सीख ली और होम्योपैथी की किताबों का अध्ययन करने के बाद खुद ही मरीजों का इलाज करने लगे। बाद में वे जमनालाल बजाज की प्रेरणा से मुंबई चले आए। यहाँ वे वीर सावरकर, नेताजी सुभाष चंद्र बोस, महादेव देसाई और कृष्णदास जाजू जैसी विभूतियों के निकट संपर्क में आए।

मुंबई में उन्होंने अग्रवाल नवयुवकों को संगठित कर मारवाड़ी खादी प्रचार मंडल की स्थापना की। इसके बाद वे प्रसिध्द संगीताचार्य विष्णु दिगंबर के सत्संग में आए और उनके हृदय में संगीत का झरना बह निकला। फिर उन्होंने भक्ति गीत लिखे जो 'पत्र-पुष्प' के नाम से प्रकाशित हुए। मुंबई में वे अपने मौसेरे भाई जयदयाल गोयन्का जी के गीता पाठ से बहुत प्रभावित थे। उनके गीता के प्रति प्रेम और लोगों की गीता को लेकर जिज्ञासा को देखते हुए भाई जी ने इस बात का प्रण किया कि वे श्रीमद् भागवद्गीता को कम से कम मूल्य पर लोगों को उपलब्ध कराएंगे। फिर उन्होंने गीता पर एक टीका लिखी और उसे कलकत्ता के वाणिक प्रेस में छपवाई। पहले ही संस्करण की पाँच हजार प्रतियाँ बिक गई। लेकिन भाईजी को इस बात का दु:ख था कि इस पुस्तक में ढेरों गलतियाँ थी। इसके बाद उन्होंने इसका संशोधित

संस्करण निकाला मगर इसमें भी गलतियाँ दोहरा गई थी। इस बात से भाई जी के मन को गहरी ठेस लगी और उन्होंने तय किया कि जब तक अपना खुद का प्रेस नहीं होगा, यह कार्य आगे नहीं बढ़ेगा। बस यही एक छोटा सा संकल्प गीता प्रेस गोरखपुर की स्थापना का आधार बना। उनके भाई गोयन्का जी व्यापार तब बांकुड़ा (बंगाल) में था और वे गीता पर प्रवचन के सिलसिले में प्राय : बाहर ही रहा करते थे। तब समस्या यह थी कि प्रेस कहाँ लगाई जाए। उनके मित्र घनश्याम दास जालान गोरखपुर में ही व्यापार करते थे। उन्होने प्रेस गोरखपुर में ही लगाए जाने और इस कार्य में भरपूर सहयोग देने का आश्वासन दिया। इसके बाद मई १९२२ में गीता प्रेस का स्थापना की गई।

१९२६ में मारवाड़ी अग्रवाल महासभा का अधिवेशन दिल्ली में था सेठ जमनालाल बजाज अधिवेशन के सभापति थे। इस अवसर पर सेठ घनश्यामदास बिड़ला भी मौजूद थे। बिड़लाजी ने भाई जी द्वारा गीता के प्रचार-प्रसार के लिए किए जा रहे कार्यों की सराहना करते हुए उनसे आग्रह किया कि सनातन धर्म के प्रचार और सद्विचारों को लोगों तक पहुँचाने के लिए एक संपूर्ण पत्रिका का प्रकाशन होना चाहिए। बिड़ला जी के इन्हीं वाक्यों ने भाई जी को कल्याण नाम की पत्रिका के प्रकाशन के लिए प्रेरित किया।

इसके बाद भाई जी ने मुंबई पहुँचकर अपने मित्र और धार्मिक पुस्तकों के उस समय के एक मात्र प्रकाशक खेमराज श्री कृष्णदास के मालिक कृष्णदास जी से `कल्याण' के प्रकाशन की योजना पर चर्चा की। इस पर उन्होंने भाई जी से कहा आप इसके लिए सामग्री एकत्रित करें इसके प्रकाशन की जिम्मेदारी मैं सम्हाल लूंगा। इसके बाद अगस्त १९५५ में कल्याण का पहला प्रवेशांक निकला। कहना न होगा कि इसके बाद `कल्याण' भारतीय परिवारों के बीच एक लोकप्रिय ही नहीं बल्कि एक संपूर्ण पत्रिका के रुप में स्थापित होगई और आज भी धार्मिक जागरण में कल्याण एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। `कल्याण' तेरह माह तक मुंबई से प्रकाशित होती रही। इसके बाद अगस्त १९२६ से गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित होने लगा।

भाईजी ने कल्याण को एक आदर्श और रुचिकर पत्रिका का रुप देने के लिए तब देश भर के महात्माओं धार्मिक विषयों में दखल रखने वाले लेखकों और संतों आदि को पत्र लिखकर इसके लिए विविध विषयों पर लेख आमंत्रित किए। इसके साथ ही उन्होंने श्रेष्ठतम कलाकारों से देवी-देवताओं के आकर्षक चित्र बनवाए और उनको कल्याण में प्रकाशित किया। भाई जी इस कार्य में इतने तल्लीन हो गए कि वे अपना पूरा समय इसके लिए देने लगे। कल्याण की सामग्री के संपादन से लेकर उसके रंग-रुप को अंतिम रुप देने का कार्य भी भाईजी ही देखते थे। इसके लिए वे प्रतिदिन अठारह घंटे देते थे। कल्याण को उन्होंने मात्र हिंदू धर्म की ही पत्रिका के रुप में पहचान देने की बजाय उसमे सभी धर्मों के आचार्यों, जैन मुनियों, रामानुज, निंबार्क, माध्व आदि संप्रदायों के विद्वानों के लेखों का प्रकाशन किया।

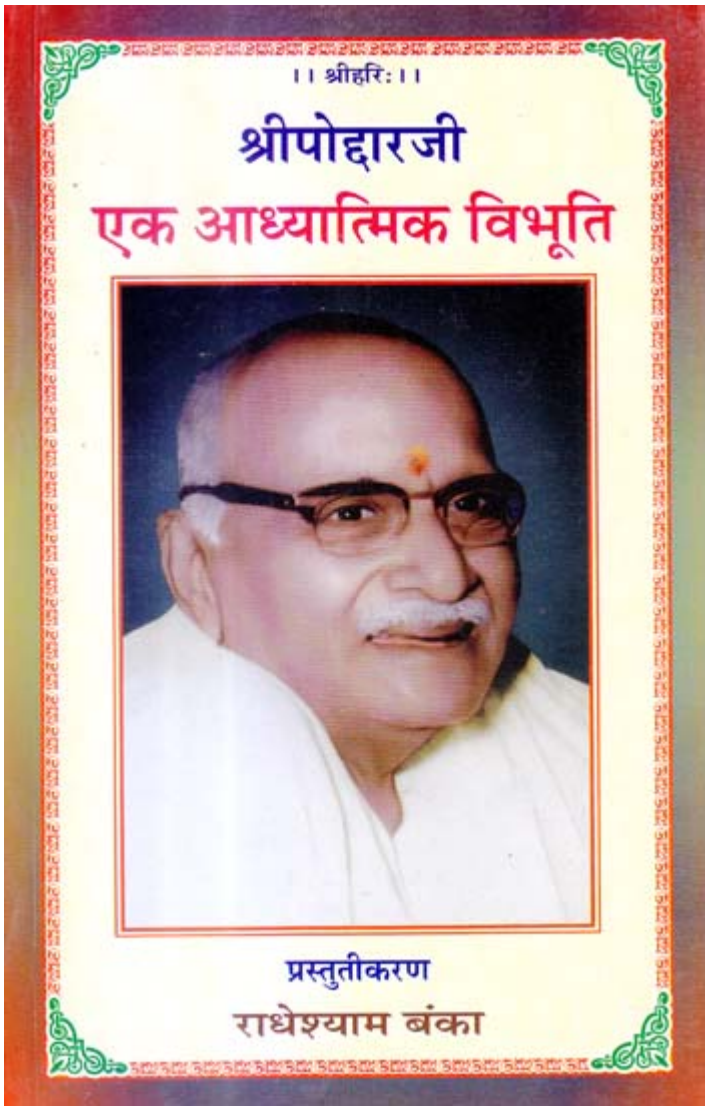

भाईजी ने अपने जीवन काल में गीता प्रेस गोरखपुर में पौने छ : सौ से ज्यादा पुस्तकें प्रकाशित की। इसके साथ ही उन्होंने इस बात का भी ध्यान रखा कि पाठकों को ये पुस्तकें लागत मूल्य पर ही उपलब्ध हों। कल्याण को और भी रोचक व ज्ञानवर्धक बनाने के लिए समय-समय पर इसके अलग-अलग विषयों पर विशेषांक प्रकाशित किए गए। भाई जी ने अपने जीवन काल में प्रचार-प्रसार से दूर रहकर ऐसे ऐसे कार्यों को अंजाम दिया जिसकी बस कल्पना ही की जा सकती है। १९३६ में गोरखपुर में भयंकर बाढ़ आगई थी। बाढ़ पीड़ित क्षेत्र के निरीक्षण के लिए पं. जवाहरलाल नेहरु -जब गोरखपुर आए तो तत्कालीन अंग्रेज सरकार के दबाव में उन्हें वहाँ किसी भी व्यक्ति ने कार उपलब्ध नहीं कराई, क्योंकि अंग्रेज कलेक्टर ने सभी लोगों को धौंस दे रखी थी कि जो भी नेहरु जी को कार देगा उसका नाम विद्रोहियों की सूची में लिख दिया जाएगा। लेकिन भाई जी ने अपनी कार नेहरु जी को दे दी।

१९३८ में जब राजस्तथान में भयंकर अकाल पड़ा तो भाई जी अकाल पीड़ित क्षेत्र में पहुँचे और उन्होंने अकाल पीड़ितों के साथ ही मवेशियों के लिए भी चारे की व्यवस्था करवाई। बद्रीनाथ, जगन्नाथपुरी, रामेश्वरम, द्वारका, कालड़ी श्रीरंगम आदि स्थानों पर वेद-भवन तथा विद्यालयों की स्थापना में भाईजी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अपने जीवन-काल में भाई जी ने २५ हजार से ज्यादा पृष्ठों का साहित्य-सृजन किया।

फिल्मों का समाज पर कैसा दुष्परिणाम आने वाला है इन बातों की चेतावनी भाई जी ने अपनी पुस्तक `सिनेमा मनोरंजन या विनाश' में देदी थी। दहेज के नाम पर नारी उत्पीड़न को लेकर भाई जी ने `विवाह में दहेज' जैसी एक प्रेरक पुस्तक लिखकर इस बुराई पर अपने गंभीर विचार व्यक्त किए थे। महिलाओं की शिक्षा के पक्षधर भाई जी ने `नारी शिक्षा' के नाम से और शिक्षा-पध्दति में सुधार के लिए वर्तमान शिक्षा के नाम से एक पुस्तक लिखी। गोरक्षा आंदोलन में भी भाई जी ने भरपूर योगदान दिया। भाई जी के जीवन से कई चमत्कारिक और प्रेरक घटनाएं जुड़ी हुई है। लेकिन उनके जीवन की सबसे महत्वपूर्ण बात यही है कि एक संपन्न परिवार से संबंध रखने और अपने जीवन काल में कई महत्वपूर्ण लोगों से जुड़े होने और उनकी निकटता प्राप्त करने के बावजूद भाई जी को अभिमान छू तक नहीं गया था। वे आजीवन आम आदमी के लिए सोचते रहे। इस देश में सनातन धर्म और धार्मिक साहित्य के प्रचार और प्रसार में उनका योगदान उल्लेखनीय है। गीता प्रेस गोरखपुर से पुस्तकों के प्रकाशन से होने वाली आमदनी में से उन्होंने एक हिस्सा भी नहीं लिया और इस बात का लिखित दस्तावेज बनाया कि उनके परिवार का कोई भी सदस्य इसकी आमदनी में हिस्सेदार नहीं रहेगा।

अंग्रेजों के जमाने में गोरखपुर में उनकी धर्म व साहित्य सेवा तथा उनकी लोकप्रियता को देखते हुए तत्कालीन अंग्रेज कलेक्टर पेडले ने उन्हें `राय साहब' की उपाधि से अलंकृत करने का प्रस्ताव रखा था, लेकिन भाई जी ने विनम्रतापूर्वक इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। इसके बाद अंग्रेज कमिश्नर होबर्ट ने `राय बहादुर' की उपाधि देने का प्रस्ताव रखा लेकिन भाई जी ने इस प्रस्ताव को भी स्वीकार नहीं किया।

देश की स्वाधीनता के बाद डॉ, संपूर्णानंद, कन्हैयालाल मुंशी और अन्य लोगों के परामर्श से तत्कालीन केंद्रीय गृह मंत्री गोविंद वल्लभ पंत ने भाई जी को `भारत रत्न' की उपाधि से अलंकृत करने का प्रस्ताव रखा लेकिन भाई जी ने इसमें भी कोई रुचि नहीं दिखाई।

२२ मार्च १९७१ को भाई जी ने इस नश्वर शरीर का त्याग कर दिया और अपने पीछे वे `गीता प्रेस गोरखपुर' के नाम से एक ऐसा केंद्र छोड़ गए, जो हमारी संस्कृति को पूरे विश्व में फैलाने में एक अग्रणी भूमिका निभा रहा है।